जैन ज्योतिष साहित्य : एक दृष्टि

डा० तेजसिंह गौड़, एम० ए०, पी-एच० डी०
(उन्हेल—जिला उज्जैन, म० प्र०)

[हमारे अभिनन्दनीय ज्योतिर्विद श्री कस्तूरचन्द जी म० का ज्योतिष प्रिय विषय रहा है। आपश्री का ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान शास्त्र तथा अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ है। अतः आपश्री के अभिनन्दन ग्रन्थ में ज्योतिष से सम्बन्धित कुछ सामग्री देना भी प्रासंगिक एवं वांछनीय है। पाठक पढ़ें ज्योतिष विषयक ज्ञानपूर्ण लेख। —संपादक]

मानव स्वभाव से जिज्ञासु है। क्यों ? क्या ? कैसे ? कब ? कहाँ ? आदि प्रश्नों की जानकारी वह अधिक-से-अधिक प्राप्त कर रखना चाहता है। आदिम मानव भी प्रकृति के विभिन्न परिवर्तनों को आश्चर्य से देखता होगा। दिन के बाद रात और रात में असंख्य तारागण। कोई तारा अधिक प्रकाशमान तो कोई मध्यम प्रकाश वाला। कभी आकाश में चन्द्रमा अपनी छटा बिखेरता हुआ दिखाई देता है तो कभी घोर अँधेरा। चन्द्रमा का घटना और बढ़ना उस मानव के लिए एक अजीब रहस्य रहा होगा। आकाश की ओर तारागणों की छटा निहारते-निहारते एकाएक किसी गिरते तारे को देख वह चौंक उठता होगा। इन सब के विषय में उसकी जानने की जिज्ञासा ने इस ओर उसे प्रवृत्त किया होगा। फिर दिन-रात दिन में समय नापने की समस्या भी आई होगी। दिन के बाद पक्ष, पक्ष के बाद मास और वर्ष की गणना का विकास हुआ होगा। ऋतुचक्रों के ज्ञान से महीनों के नामों को जन्म मिला। फिर भी इन सबका ज्ञान और जन्म कब और किस प्रकार बोधगम्य हुआ, निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि ज्योतिष का इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ में छिपा हुआ है और जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया ज्योतिष का भी विकास होता गया। आज तो स्थिति ऐसी है कि प्राचीन मानव ने जिन्हें देवता माना उनके रहस्यों को उजागर कर दिया गया है तथा आज का वैज्ञानिक मानव विभिन्न ग्रह नक्षत्रों के रहस्यों को उजागर करने में संलग्न है। इसकी कल्पना तो प्राचीन मानव ने की भी नहीं होगी।

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति "**ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्**" से की गई है, अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिःशास्त्र कहा जाता है।[१] ज्योतिषशास्त्र के दो रूप माने जाते हैं—(१) बाह्य (२) आभ्यंतरिक। बाह्य रूप में ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु आदि ज्योतिः पदार्थों का निरूपण एवं ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्थिति और उनके संचारानुसार शुभाशुभ फलों का कथन किया जाता है। आभ्यंतरिक रूप में समस्त भारतीय दर्शन आ जाता है। प्रायः सभी भारतीय दार्शनिकों ने आत्मा को अमर माना है। उनके मतानुसार उसका कभी नाश नहीं होता है। कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण केवल उसके पर्यायों में परिवर्तन होता रहता है।[२] कुछ मनीषियों का अभिमत है कि नभोमण्डल में स्थित ज्योतिः सम्बन्धी विविध

---

१ भारतीय ज्योतिष—नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० २
२ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृ० २२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयक विद्या को ज्योतिर्विद्या कहते हैं, जिस शास्त्र में इस विद्या का सांगोपांग वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र है। इस लक्षण और पहले वाले[1] ज्योतिषशास्त्र के व्युत्पत्त्यर्थ में केवल इतना ही अन्तर है कि पहले में गणित और फलित दोनों प्रकार के विज्ञानों का समन्वय किया गया है, पर दूसरे में खगोल ज्ञान पर ही दृष्टिविन्दु रखा गया है।[2]

भारतीय ज्योतिष की परिभाषा स्कन्धत्रय सिद्धान्त, होरा, और संहिता अथवा स्कन्धपञ्च सिद्धान्त, होरा, संहिता, प्रश्न और शकुन ये अंग माने गये हैं। यदि विराट पञ्चस्कन्धात्मक परिभाषा का विश्लेषण किया जाय तो आज का मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, पदार्थविज्ञान, रसायनविज्ञान, चिकित्साशास्त्र, इत्यादि भी इसी के अन्तर्भूत हो जाते हैं।[3]

जहाँ तक इस विज्ञान के इतिहास का प्रश्न है, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि वह सुदूर भूतकाल के गर्भ में छिपा हुआ है। यद्यपि इसका शृंखलाबद्ध इतिहास हमें आर्यभट्ट के समय से मिलता है तथापि इसके पूर्व के ग्रन्थ वेद, अंग साहित्य, ब्राह्मण साहित्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, गर्गसंहिता, ज्योतिषकरण्डक एवं ज्योतिषवेदांग आदि ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र विषयक अनेक महत्वपूर्ण बातों का विवरण मिलता है।

वैदिककाल में ज्योतिष का अध्ययन होता था। यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' की चर्चा इसका प्रमाण है।[4] छान्दोग्य उपनिषद् में नक्षत्र विद्या का उल्लेख है।[5] प्राचीनकाल से ज्योतिष वेद के छः अंगों में गिना जाता रहा है।[6] ऋग्वेद के समय वर्ष में बारह मास और मास में तीस दिन माने जाते थे।[7] अधिक मास विषयक जानकारी भी ऋग्वेद में मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ नक्षत्रों के नाम भी आते हैं जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था।[8] यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ऋग्वेद कोई ज्योतिष विषयक ग्रन्थ नहीं है। उसमें प्रसंगवश ऐसी बातें आ गई हैं जिससे हमें उस समय के ज्योतिष विज्ञान विषयक ज्ञान की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता में सत्ताइस नक्षत्रों की सूची है, अथर्ववेद में ग्रहणों की चर्चा है और कौषीतकी ब्राह्मण भी ज्योतिष विषयक जानकारी उपलब्ध कराता है।[9]

लगध-मुनि का 'ज्योतिष वेदांग' हिन्दी ज्योतिष विज्ञान का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। उसमें केवल सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का ही विचार किया गया है। उसमें अन्यान्य ग्रहों की चर्चा भी नहीं की गई है।[10] ज्योतिष वेदांग या वेदांग ज्योतिष एक छोटी-सी पुस्तक है जिसके दो पाठ मिलते हैं—एक ऋग्वेद ज्योतिष, दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष। दोनों के विषय और अधिकांश

---

१ ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्।
२ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ २
३ वही, पृ० २
४ ३०।१०
५ ७।१।२; ७।१।४; ७।२।१; ७।७।१
६ आपस्तम्बधर्मसूत्र ४।२।८।१०
७ विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ७५४-५५
८ वही, पृष्ठ ७५६-५७
९ वही, पृष्ठ ७५७
१० बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक एक ही हैं। परन्तु ऋग्वेद ज्योतिष में कुल ३६ श्लोक हैं और दूसरे में ४४।[1] वेदांग ज्योतिष में पञ्चवर्षीय युग पर से उत्तरायण और दक्षिणायन के तिथि, नक्षत्र एवं दिनमान आदि का साधन किया गया है। इसके अनुसार युग का आरम्भ माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्य और चन्द्रमा के धनिष्ठा नक्षत्र सहित क्रांतिवृत्त में पहुँचने पर माना गया है। वेदांग ज्योतिष का रचनाकाल कई शती ईस्वी पूर्व माना जाता है। इसके रचनाकाल का पता लगाने के लिए विद्वानों ने जैन ज्योतिष को ही पृष्ठभूमि स्वीकार किया है।[2] वेदांग ज्योतिष पर अन्य ग्रंथों के प्रभाव की चर्चा करते हुए पं० नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है, "वेदांग ज्योतिष पर उसके समकालीन षट्खण्डागम में उपलब्ध ज्योतिष चर्चा, सूर्यप्रज्ञप्ति एवं ज्योतिषकरण्डक आदि जैन ज्योतिष ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।"[3]

जैन ग्रन्थ यतिवृषभ का तिलोयपण्णत्ती, सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों में जो वैदिक ग्रन्थों के समय से अवश्य कुछ बाद के हैं, उनमें सामान्य जगत स्वरूप, नारक लोक, भवनवासी लोक, मनुष्य लोक, व्यंतर लोक, ज्योतिर्लोक, सुरलोक और सिद्धलोक आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। यदि जैन 'करणानुयोग' ग्रन्थ या प्राकृत 'लोक विभाग' ग्रन्थ उपलब्ध हो जाते तो इनकी प्राचीनता सिद्ध हो सकती थी। क्योंकि यतिवृषभ के 'तिलोयपण्णत्ती' का आधार वही था और उस ग्रन्थ समाप्ति के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र में शनैश्चर, वृषभ में वृहस्पति और उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था तथा शुक्ल-पक्ष था। इससे यह तो पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि यतिवृषभ के समय नक्षत्रों, राशियों और ग्रहों का पूर्ण विकास हो चुका था और मनुष्य शुभाशुभ के फल को ज्ञात कर दैनिक कार्यों के उपयोग में लेने लग गये थे।[4]

सूर्यप्रज्ञप्ति में २० पाहुड हैं, जिनके अन्तर्गत १०८ सूत्रों में सूर्य तथा चन्द्र व नक्षत्रों की गतियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष सम्बन्धी मान्यताओं के अध्ययन के लिए यह रचना विशेष महत्त्वपूर्ण है।[5] सूर्यप्रज्ञप्ति में पंचवर्षात्मक युग का उल्लेख करते हुए लिखा है, "श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन सूर्य जिस समय अभिजित नक्षत्र पर पहुँच जाता था उसी समय पंचवर्षीय युग प्रारम्भ होता है।"[6] सूर्यप्रज्ञप्ति की भाषा प्राकृत है और मलयगिरिसूरि ने संस्कृत टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से सूर्य के गमन, आयु, परिवार और संख्या का निरूपण किया गया है। इसमें जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा बताये हैं तथा प्रत्येक सूर्य के अट्ठाइस-अट्ठाइस नक्षत्र अलग कहे गये हैं। इन सूर्यों का भ्रमण एकान्तर रूप से होता है, जिससे दर्शकों को एक ही सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इसमें दिन, पक्ष, मास, अयन आदि का विवरण मिलता है।[7] इसमें वर्णित यह दिनमान सब जगह एक नहीं होगा, क्योंकि हमारे निवास रूपी पृथ्वी, जो कि जम्बूद्वीप का एक भाग है, समतल नहीं है। यद्यपि जैन मान्यता में जम्बूद्वीप को समतल माना गया है, लेकिन सूर्य-प्रज्ञप्ति में बताया गया है कि पृथ्वी के बीच में हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरिणी इन छः पर्वतों के आ जाने से यह कहीं ऊँची और कहीं नीची हो गई है।[8]

---

१ विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ७५८
२ वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४६९-७०
३ वही, पृष्ठ ४७०
४ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २२४
५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ६६
६ वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४७०
७ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ९०
८ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रज्ञप्ति अपने विषय विभाजन व प्रतिपादन में सूर्यप्रज्ञप्ति से अभिन्न है। मूलतः ये दोनों अवश्य अपने-अपने विषय में भिन्न रहे होंगे, किन्तु उनका मिश्रण होकर वे प्रायः एक से हो हो गये हैं।[1] श्री पं० नेमिचन्द्र शास्त्री[2] ने लिखा है कि इसका विषय सूर्यप्रज्ञप्ति की अपेक्षा परिष्कृत है। इसमें सूर्य की प्रतिदिन की योजनात्मिका गति निकाली है तथा उत्तरायण और दक्षिणायन की वीथियों का अलग-अलग विस्तार निकाल कर सूर्य और चन्द्रमा की गति निश्चित की है। इसके चतुर्थ प्राभृत में चन्द्र और सूर्य का संस्थान तथा तापक्षेत्र का संस्थान विस्तार से बताया है। ग्रन्थकर्ता ने समचतुस्र, विषमचतुस्र आदि विभिन्न आकारों का खण्डन कर सोलह वीथियों में चन्द्रमा का समचतुस्र गोल आकार बताया है। इसका कारण यह है कि सुषमा-सुषमा काल के आदि में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जम्बूद्वीप का प्रथम सूर्य पूर्वदक्षिण (अग्निकोण) में और द्वितीय सूर्य पश्चिमोत्तर (वायव्यकोण) में चला। इसी प्रकार प्रथम चन्द्रमा पूर्वोत्तर (ईशानकोण) में और द्वितीय चन्द्रमा पश्चिम दक्षिण (नेऋत्यकोण) में चला। अतएव युगादि में सूर्य और चन्द्रमा का समचतुस्र संस्थान था, पर उदय होते समय ये ग्रह वर्तुलाकार से निकले, अतः चन्द्र और सूर्य का आकार अर्द्धपीठ अर्धसमचतुस्र गोल बताया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति में छाया साधन किया है; तथा छाया प्रमाण पर दिनमान का भी प्रमाण निकाला है। ज्योतिष की दृष्टि से यह विषय महत्त्वपूर्ण है।[3] चन्द्रप्रज्ञप्ति के १९वें प्राभृत में चन्द्रमा को स्वतः प्रकाशमान बतलाया तथा इसके घटने-बढ़ने का कारण भी स्पष्ट किया है। १८वें प्राभृत में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की ऊँचाई का कथन किया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ में अन्य मान्यताओं की मीमांसा की गई है और अन्त में जैन मान्यता के अनुसार ७९० योजन से लेकर ९०० योजन की ऊँचाई के बीच ग्रह नक्षत्रों की स्थिति बतायी है। २०वें प्राभृत में सूर्य और चन्द्र ग्रहणों का वर्णन किया गया है तथा राहु और केतु के पर्यायवाची शब्द भी गिनाये गये हैं, जो आजकल के प्रचलित नामों से भिन्न हैं।[4] चन्द्रमा को स्वतः प्रकाशमान बतलाना वर्तमान युग की खोजों के सन्दर्भ में कितना सत्य है, यह विद्वान पाठक स्वयं विचार कर लें। क्योंकि वर्तमान मान्यता ठीक इसके विपरीत है।

'ज्योतिषकरण्डक' नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है जिसे मुद्रित प्रति में 'पूर्वभृद् वालभ्य प्राचीनतराचार्य कृत' कहा गया है। इस पर पादलिप्तसूरिकृत टीका का भी उल्लेख मिलता है।[5] इस टीका के अवतरण मलयगिरि ने इस ग्रन्थ पर लिखी हुई अपनी संस्कृत टीका में दिये हैं।[6] उपलभ्य 'ज्योतिष-करण्डक'—प्रकीर्णक में ३७६ गाथाएँ हैं, जिनकी भाषा व शैली जैन महाराष्ट्री प्राकृत रचनाओं से मिलती है। ग्रन्थ के आदि में कहा गया है कि सूर्यप्रज्ञप्ति में जो विषय विस्तार से वर्णित है उसको यहाँ संक्षेप से पृथक् उद्धृत किया जाता है। ग्रन्थ में कालप्रमाण, मान, अधिक मास निष्पत्ति, तिथि निष्पत्ति, नक्षत्र, चन्द्र-सूर्य गति, नक्षत्र योग, मण्डल विभाग, अयन आवृत्ति, मुहूर्त, गति, ऋतु, विषुवत (अहोरात्रि समत्व), व्यतिपात, ताप, दिवस शुद्धि, अमावस, पूर्णमासी,

---

१ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ६६
२ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ९२-९३
३ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ९३
४ वही, पृष्ठ ९४
५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ९८
६ प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रनष्टपर्व और पौरुषी ये इक्कीस पाहुड है।[1] पं० नेमिचन्द्र शास्त्री[2] ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखा है कि यह प्राचीन ज्योतिष का मौलिक ग्रन्थ है। इसका विषय वेदांग ज्योतिष के समान अविकसित अवस्था में है। इसमें भी नक्षत्र लग्न का प्रतिपादन किया गया है। भाषा एवं रचना शैली आदि के परीक्षण से पता लगता है कि यह ग्रन्थ ई० पू० ३००-४०० का है। इसमें लग्न के सम्बन्ध में बताया गया है—

लग्गं च दक्खिणाय विसुवे सुवि अस्स उत्तरं अयणे।
लग्गं साई विसुवेसु पञ्चसु वि दक्खिणे अयणे॥

अर्थात्—अस्स यानि अश्विनी और साई यानि स्वाति ये नक्षत्र विषुव के लग्न बताये गये हैं। यहाँ विशिष्ट अवस्था की राशि के समान विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को लग्न माना है।

इस ग्रन्थ में कृत्तिकादि, धनिष्ठादि, भरण्यादि, श्रवणादि एवं अभिजितादि नक्षत्र गणनाओं की समालोचना की गई है।

इसके समकालीन एवं बाद के जैनेतर साहित्य में ज्योतिष की चर्चा है तथा स्वतन्त्र ज्योतिष के ग्रन्थ भी लिखे गये, जो रचयिता के नाम पर उन सिद्धान्तों के नाम से प्रसिद्ध हुए। वराहमिहिर ने अपने पंचसिद्धान्तिका नामक संग्रह ग्रंथ में पितामह सिद्धान्त, वसिष्ठ सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त इन पाँच सिद्धान्तों का संग्रह किया है। डा० थीबो ने पंच-सिद्धान्तिका की अंग्रेजी भूमिका में पितामह सिद्धान्त को सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋक्ज्योतिष के समान प्राचीन बताया है, लेकिन परीक्षण करने पर इसकी इतनी प्राचीनता मालूम नहीं पड़ती है। ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने पितामह सिद्धान्त को आधार माना है।

प्रस्तुत निबन्ध में इन पाँचों सिद्धान्तों की तथा ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुटिक सिद्धान्त की चर्चा करना विषयेतर ही होगा। अस्तु, यहाँ उनका नामोल्लेख ही पर्याप्त है। इसके साथ ही एक बात और स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यह एक निबन्ध है, पुस्तक नहीं। अतः समस्त जैन ज्योतिष साहित्य का विवेचन सम्भव नहीं होगा। प्रमुख जैन ज्योतिषाचार्यों एवं उनके द्वारा रचित साहित्य का विवरण ही दिया जा सकेगा।

ऋषिपुत्र—ये जैन धर्मावलम्बी थे तथा ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनके वंश आदि के सम्बन्ध में सम्यक् परिचय नहीं मिलता है। लेकिन Catalogue Catalogorum में इन्हें आचार्य गर्ग का पुत्र बताया है।[3] गर्ग मुनि ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आर्यभट्ट के पहले हुए ज्योतिषियों में से गर्ग की चर्चा कई स्थानों पर आती है। महाभारत में लिखा है कि गर्ग महर्षि राजा पृथु के ज्योतिषी थे। उनको काल का ज्ञान विशेष रूप से अच्छा था। उनका गार्गी संहिता अब लुप्त हो गया है, परन्तु सम्भव है गणित ज्योतिष के बदले इसमें फलित ज्योतिष की बातें ही अधिक रही हों। वराहमिहिर ने अपने फलित ज्योतिष के ग्रन्थ वृहत्-संहिता में गर्ग से कई अवतरण दिये हैं।[4] श्री प्रकाशचन्द्र पाण्ड्या इनका समय ई० पू० १८० या १०० बताते हुए लिखते हैं, "मेरे ख्याल से ये गर्गमुनि के पुत्र नहीं बल्कि शिष्य हो सकते हैं।"[5] श्री नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते[6] हैं कि इनका (ऋषिपुत्र का) नाम भी इस बात का साक्षी है कि यह

---

१ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ९८
२ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ९४-९५
३ पृष्ठ, ७३
४ विक्रम स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ ७६०
५ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ २२७
६ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ १०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी मुनि के पुत्र थे। ऋषिपुत्र का वर्तमान में एक 'निमित्तशास्त्र' उपलब्ध है। इनके द्वारा रची गई एक संहिता का भी मदनरत्न नामक ग्रंथ में उल्लेख मिलता है। इन आचार्य के उद्धरण वृहत्संहिता की भट्टोत्पली टीका में मिलते हैं। इससे इनका समय वराहमिहिर के पूर्व में है। इन्होंने अपने वृहज्जातक के २६वें अध्याय के ५वें पद्य में कहा है, **"मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरा वराहमिहिरो रुचिरांचकारा"** इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर के पूर्व होरा सम्बन्धी परम्परा विद्यमान थी। इसी परम्परा में ऋषिपुत्र हुए। ऋषिपुत्र का प्रभाव वराहमिहिर की रचनाओं पर स्पष्ट लक्षित होता है।

संहिता विषय की प्रारम्भिक रचना होने के कारण ऋषिपुत्र की रचनाओं में विषय की गम्भीरता नहीं है। किसी एक ही विषय पर विस्तार से नहीं लिखा है; सूत्ररूप में प्रायः संहिता के प्रतिपाद्य सभी विषयों का निरूपण किया है। शकुनशास्त्र का निर्माण इन्होंने किया है। अपने निमित्तशास्त्र में इन्होंने पृथ्वी पर दिखाई देने वाले, आकाश में दृष्टिगोचर होने वाले और विभिन्न प्रकार के शब्द श्रवण द्वारा फलाफल का अच्छा निरूपण किया है। वर्षोत्पात, देवोत्पात, तेजोत्पात उल्कोत्पात, गन्धर्वोत्पात इत्यादि अनेक उत्पातों द्वारा शुभाशुभत्व की मीमांसा बड़े सुन्दर ढंग से इनके निमित्तशास्त्र में मिलती है।[1]

कालकाचार्य—ये निमित्त और ज्योतिष के विद्वान थे। ये मध्य देशांतर्गत थे और यवन देशादि में गये थे तथा उस देश से रमल विद्या यहाँ लाये थे। इसका उल्लेख भोजसागरगणि नामक विद्वान ने अपने संस्कृत भाषा के "रमलशास्त्र" विषयक ग्रंथ में किया है।[2] जैन परम्परा में ज्योतिष के प्रवर्त्तकों में इनका मुख्य स्थान है। यदि यह आचार्य निमित्त और संहिता निर्माण न करते तो उत्तरवर्ती जैन लेखक ज्योतिष को पापश्रुत समझकर अछूता ही छोड़ देते।[3]

इसके बाद ज्योतिष के विकास की धारा आगे बढ़ती है। कुछ लोग ईस्वी सन् ६००-७०० के आसपास भारत में प्रश्न अंग का ग्रीक और अरबों के सम्पर्क से विकास हुआ बतलाते हैं तथा इस अंग का मूलाधार भी उक्त देशों के ज्योतिष को मानते हैं पर यह गलत मालूम पड़ता है। क्योंकि जैन ज्योतिष जिसका महत्त्वपूर्ण अंग प्रश्नशास्त्र है, ईस्वी सन् की चौथी और पाँचवीं शताब्दी में पूर्ण विकसित था। इस मान्यता में भद्रबाहु विरचित "अर्हच्चूड़ामणिसार" प्रश्नग्रंथ प्राचीन और मौलिक माना गया है। आगे के प्रश्नग्रन्थों का विकास इसी ग्रंथ की मूलभित्ति पर हुआ प्रतीत होता है। जैन मान्यता में प्रचलित प्रश्नशास्त्र का विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि इसका बहुत कुछ अंश मनोविज्ञान के अन्तर्गत ही आता है। ग्रीकों से जिस प्रश्नशास्त्र को भारत ने ग्रहण किया है, वह उपर्युक्त प्रश्नशास्त्र से विलक्षण है।[4]

ईसा की पाँचवीं सदी के उपरांत जैन ज्योतिष साहित्य में पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। जैन ज्योतिषाचार्यों ने भी मुक्तहस्त से इस विषय पर अपनी कलम चलाई और यही कारण है कि आज जैन ज्योतिष ग्रंथों का विपुल भण्डार भरा पड़ा है। अब तो मात्र उनकी खोज, अध्ययन और प्रकाशन की आवश्यकता है। विस्तारभय के कारण मैं उन सबका यहाँ विवरण न देकर कुछ विशिष्ट जैन ज्योतिष साहित्य रचयिता और उनके ग्रंथों का नामोल्लेख ही करूँगा। यथा—

---

१ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ १०५
२ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २२७-२२८
३ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ १०७
४ वही, पृष्ठ ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) **महावीराचार्य**—ये जैनधर्मावलम्बी थे एवं गणित के धुरन्धर विद्वान थे। इनके द्वारा रचे गये ज्योतिषपटल एवं गणितसार नामक ग्रंथ मिलते हैं।

(२) **चन्द्रसेन**—इनके द्वारा रचित 'केवलज्ञान होरा' नामक एक विशालकाय महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(३) **श्रीधराचार्य**—ये कर्णाटक प्रांत के निवासी थे। इनके ग्रंथों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—(१) जातकतिलक या होराशास्त्र (२) ज्योतिर्ज्ञानविधि या श्रीकरण (३) गणितसार या त्रिशतिका इनके द्वारा बीजगणित एवं लीलावती नामक ग्रंथों की रचना का भी उल्लेख मिलता है।

(४) **दुर्गदेव**—ये उत्तर भारत में कुम्भनगर के रहने वाले थे। इन्होंने अपने रिष्टसमुच्चय की रचना सं० १०८९ में की। अन्य रचनाओं में अर्द्धकरण और मंत्रमहोदधि है जो कि प्राकृत में है।

(५) **मल्लिषेण**—इनका ग्रंथ 'आयसद्भाव' प्रश्नशास्त्र फलित ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(६) **नरचन्द्र उपाध्याय**—इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचना की है। वर्तमान में इनके (१) बेड़ाजातकवृत्ति, (२) प्रश्नशतक, (३) प्रश्न चतुर्विंशतिका, (४) जन्म समुद्र-सटीक, (५) लग्नविचार और (६) ज्योतिष प्रकाश नामक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

(७) **समन्तभद्र**—इनके द्वारा लिखा हुआ ग्रंथ 'केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि' है। रचना शैली की दृष्टि से ग्रंथ का रचनाकाल १२वीं-१३वीं सदी प्रतीत होता है।

(८) **हेमप्रभसूरि**—इनके द्वारा रचित ग्रंथ त्रैलोक्य प्रकाश है। 'मेघमाला' नामक ग्रंथ भी आपने ही लिखा है।

(९) **हरिकलश**—ये खरतरगच्छ के थे। इन्होंने ई० सन् १५६४ में नागौर में ज्योतिषसार नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना प्राकृत में की है।

(१०) **मेघविजयगणि**—ये ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनका समय वि० सं० १७३७ के आसपास माना जाता है। इनके द्वारा रचित मेघमहोदय या वर्ष प्रबोध, उदय दीपिका, रमलशास्त्र और हस्तीसंजीवन आदि मुख्य हैं। प्रश्नसुन्दरी और विशायंत्रविधि भी इनके द्वारा रचे गये।

(११) **महिमोदय**—इनका समय वि० सं० १७२२ के आसपास बताया जाता है। ये गणित और फलित दोनों प्रकार के ज्योतिष के विद्वान् थे। इनके द्वारा रचित ज्योतिष रत्नाकर, गणित साठ सौ, पंचाङ्गानयनविधि ग्रंथ कहे जाते हैं।

(१२) **उभयकुशल**—इनका समय सं० १७३७ के लगभग माना जाता है। ये फलित ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने विवाह पटल, चमत्कार चिंतामणि टवा नामक दो ज्योतिष ग्रंथों की रचना की है।

(१३) **लब्धिचन्द्रगणि**—ये खरतरगच्छीय कल्याणनिधान के शिष्य थे। इन्होंने वि० सं० १७५१ के कार्तिक मास में जन्मपत्री पद्धति नामक एक व्यवहारोपयोगी ज्योतिष का ग्रंथ बनाया है।

(१४) **बाघजी मुनि**—ये पार्श्वचन्द्र गच्छीय शाखा के मुनि थे। इनका समय वि० सं० १७८३ माना जाता है। इन्होंने 'तिथि सारिणी' नामक एक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है, इसके अतिरिक्त इनके दो तीन फलित ज्योतिष के भी मुहूर्त्त सम्बन्धी ग्रंथों का पता लगता है।

(१५) **यशस्वतसागर**—इनका दूसरा नाम जसवन्तसागर भी बताया जाता है। ये ज्योतिष, न्याय, व्याकरण और दर्शनशास्त्र के धुरन्धर विद्वान थे। इन्होंने ग्रहलाघव के ऊपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वार्तिक नाम की टीका लिखी है। वि० सं० १७६२ में जन्म कुण्डली विषय को लेकर 'यशोराज पद्धति' नामक एक व्यवहारोपयोगी ग्रंथ लिखा है।[1]

इसी प्रकार और भी अनेकों जैन ज्योतिषाचार्य हो चुके हैं जिन्होंने जैन ज्योतिष साहित्य में अभिवृद्धि की है। एक बात स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से ही जैन ज्योतिषाचार्य इस विज्ञान में रुचि लेते रहे हैं। इसकी प्राचीनता पर डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है, "जैन ज्योतिष की प्राचीनता का एक प्रमाण पंचवर्षात्मक युग में व्यतीपात आनयन की प्रक्रिया है। वेदांग ज्योतिष से भी पहले इस प्रक्रिया का प्रचार भारत में था।"[2] डा० शास्त्री ने आगे लिखा, "नक्षत्रों के सम्बन्ध में जितना ऊहापोह जैनाचार्यों ने किया है, उतना अन्य लोगों ने नहीं। प्रश्नव्याकरणांग में नक्षत्र योगों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। इसमें नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुल का निरूपण बताया है।"[3] जैनाचार्यों ने ज्योतिष के विविध अंगों पर प्रकाश डाला है। डॉ० शास्त्री कहते हैं, "विषय विचार की दृष्टि से जैन ज्योतिष को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक गणित और दूसरा फलित। गणित ज्योतिष में सैद्धांतिक दृष्टि से गणित का महत्त्व-पूर्ण स्थान है, ग्रहों की गति, स्थिति, वक्री, मार्गी, मध्यफल, मन्दफल, सूक्ष्मफल, कुज्या, त्रिज्या, बाण, चाप, व्यास, परिधिफल, एवं केन्द्रफल आदि का प्रतिपादन बिना गणित ज्योतिष के नहीं हो सकता है। आकाश मंडल में विकीर्णित तारिकाओं का ग्रहों के साथ कब कैसा सम्बन्ध है, इसका ज्ञान भी गणित प्रक्रिया से ही सम्भव है जैनाचार्यों ने गणित ज्योतिष सम्बन्धी विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाटीगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, गोलीय रेखागणित, चापीय एवं वक्रीय त्रिकोणमिति, प्रतिभागणित, शृंगोन्नतिगणित, पंचांगनिर्माण गणित, जन्मपत्रनिर्माण गणित, ग्रहयुति, उदयास्त सम्बन्धी गणित एवं मन्त्रादि साधन सम्बन्धी गणित प्रतिपादन किया है।"[4]

---

१ क्रमांक १ से १५ तक ज्योतिषाचार्यों के द्वारा रचित ज्योतिष साहित्य के विशेष अध्ययन हेतु देखें—

(१) भारतीय ज्योतिष—श्री नेमिचन्द्र शास्त्री
(२) जैन साहित्य और इतिहास – पं० नाथूराम प्रेमी
(३) गणितसार संग्रह – सं० डा० ए० एन० उपाध्ये व अन्य
(४) Ganitatilak by Sripati—Edt. H. R. Kapadia.
(५) जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १४, कि० १, २, भाग १३ कि० २
(६) दुगदेवाचार्यकृत शिष्टसमुच्चय—सं० अ० स० गोपाणी
(७) Jainism in Rajasthan—Dr. K. C. Jain
(८) केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—सं० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री
(९) जैन वाङ्मय का प्रामाणिक सर्वेक्षण—सोहनी
(१०) Trailokya Prakash—Edt. आचार्य रामस्वरूप शर्मा
(११) जिनरत्नकोश—प्रो० एच० डी० वेलणकर
(१२) ज्योतिषसार संग्रह—सं० पं० भगवानदास जैन
(१३) हीरकलश जैन ज्योतिष—सं० शास्त्री दि० म० जानी
(१४) प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीशचन्द्र जैन
(१५) History of Classical Sanskrit Literature —N. Krishnamachariar.

२ केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि, प्रस्तावना, पृष्ठ ३
३ वही, पृष्ठ ४
४ वही, पृष्ठ ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त विवरण को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैनाचार्यों ने ज्योतिष पर पर्याप्त रूप से साहित्य सृजन कर दिशादान दिया है। अब यदि उनके द्वारा दिये गये मार्गदर्शन का लाभ हम नहीं उठाते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है। आज भी जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत अनेकानेक ग्रंथ छिपे हुए पड़े हैं। ऐसे छिपे हुए ग्रंथों में अन्य विषयों के साथ-साथ ज्योतिष के ग्रंथों की भी उपलब्धि सम्भव है।

जैनाचार्यों ने ज्योतिष साहित्य की अपनी गंगा को न केवल उत्तरी भारत में ही बहाया वरन् उसका प्रसार हमें दक्षिण भारत में भी मिलता है। इससे स्पष्ट है कि जैन ज्योतिष साहित्य जितना प्राचीन है, उतने ही व्यापक रूप से लिखा भी गया है। अब तो केवल उसको प्रकाश में लाने की आवश्यकता है जिससे जैन मान्यताओं का उद्घाटन हो सके। विश्वास है कि जिज्ञासु विद्वान एवं अनुसन्धानकर्ता इस दिशा में कुछ करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org